दूसरा दरवाजा

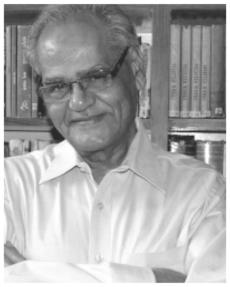

रमेश उपाध्याय

दूसरा दरवाजा

https://www.hindiadda.com/dusara-daravaja/

एक कथाकार, एक चित्रकार, एक अभिनेता और एक?... सुरेंद्र की ऐसी कोई पहचान नहीं थी। लेकिन वह उनकी मित्र-मंडली का स्थायी सदस्य था। उसकी विशिष्ट पहचान थी उसके किस्से, जिन्हें वह लिखता नहीं था, गढ़ता था और अक्सर तत्काल गढ़ता था। कोई उससे पूछता कि वह भी कोई कलाकार वगैरह क्यों नहीं है तो वह बुरा मानने के बजाय हँसते-हँसाते कोई किस्सा सुना दिया करता। मसलन :

किस्सा इंसान होने का

एक दिन मैं रेडियो सुनते हुए दफ्तर के लिए तैयार हो रहा था। ठीक-ठीक कहूँ तो बाथरूम में खड़ा शेव कर रहा था। माँ मंटू और चिंटी को स्कूल बस में चढ़ाने के लिए गई हुई थीं और कोमल किचेन में नाश्ता तैयार कर रही थी। चूँकि उस वक्त घर में रेडियो की आवाज के अलावा और कोई आवाज नहीं थी, इसलिए मैं बड़े ध्यान से सुन रहा था। फिल्मी गाने बज रहे थे। अचानक एक पुराना गाना बजने लगा - अपनी कहानी छोड़ जा, कुछ तो निशानी छोड़ जा, कौन कहे इस ओर तू फिर आए न आए...

सुनते-सुनते मैं अपने बारे में सोचने लगा - मैं मरने के बाद कौन-सी कहानी या निशानी छोड़ जाऊँगा? सोचते ही मुझे अपने इन तीनों मित्रों का खयाल आया और मुझे इनसे बड़ी ईर्ष्या हुई। रमेश तो कहानीकार ही है। वह तो ढेरों कहानियाँ छोड़ जाएगा। जसपाल चित्रकार है, वह भी अपने चित्रों के रूप में अपनी निशानियाँ छोड़ जाएगा। सतिंदर एक्टर है। स्टेज से उठकर टी.वी. सीरियल्स में तो आने ही लगा है, कल को शायद फिल्मों में भी आ जाएगा। उसकी भी बहुत-सी निशानियाँ रह जाएँगी। बस, मैं ही अभागा हूँ। मैं कुछ भी नहीं। मेरी कोई कहानी नहीं। मेरी कोई निशानी नहीं बचेगी।

सुबह का वक्त था और सुबह-सुबह मैं अपना मूड खराब नहीं करना चाहता था, इसलिए मैंने इस निराशाजनक खयाल को झटक दिया। रेडियो ने भी मदद की। दूसरा गाना बजने लगा - मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया... जो मिल गया उसी को मुकद्दर समझ लिया, जो खो गया मैं उसको भुलाता चला गया...

लेकिन यह मन को समझाने वाली बात थी। निराशा का जो दौरा मुझ पर पड़ा था, वह दूर नहीं हुआ। स्नान करने से मिली ताजगी से भी नहीं। नाश्ता करने से मिली स्फूर्ति से भी नहीं। कोमल से हँसी-मजाक करने से मिली खुशी से भी नहीं। घर से निकलने पर देखा कि मौसम सुहावना है। आसमान में बादल हैं और बड़ी प्यारी ठंडी-ठंडी हवा चल रही है। सौभाग्य से बस में भीड़ नहीं थी। मुझे सीट मिल गई और वह भी खिड़की

के पास वाली। सब कुछ अच्छा ही अच्छा हो रहा था। पर मेरे मन में रह-रहकर वही बात आ रही थी - मैं अभागा हूँ, मैं कुछ भी नहीं...

अपने तीनों दोस्तों के प्रति मेरी ईर्ष्या बढ़ते-बढ़ते नफरत में बदलने लगी। सोचने लगा - ये लेखक और कलाकार साले क्या हैं? घर-गृहस्थी के प्रति एकदम गैर-जिम्मेदार लोग। परिवार की जिम्मेदारियाँ माँ-बाप या बीवी-बच्चों पर डालकर बाहर अपना कैरियर बनाने के चक्कर में घूमते रहते हैं। काम और नाम पाने के लिए अपने-अपने क्षेत्र के प्रभावशाली लोगों के आगे दुम हिलाते रहते हैं। खुद को आगे बढ़ाने के लिए अपने जैसे दूसरों को टँगड़ी मारकर गिराते रहते हैं। इसके लिए षड्यंत्रकारी योजनाएँ बनाते हैं और खतरनाक चालें चलते हैं। अपनी प्रशंसा सबसे सुनना चाहते हैं, पर दूसरों की प्रशंसा करते इनका हलक सूखता है। जब देखो, दूसरों में ऐब निकालकर निंदा ही करते रहते हैं। अपने क्षेत्र के महान से महान लोगों की भी निंदा। जो मर गए हैं और अपना नाम अमर कर गए हैं, उनकी भी निंदा। खुद को तीसमारखाँ समझते हैं। अपने मुँह से अपनी बड़ाई करते रहते हैं। और उनको कोसते रहते हैं, जो इनको काम, नाम और इनाम नहीं देते। मेरे ये तीन मित्र भी अब तक इसीलिए मित्र बने हुए हैं कि इनके क्षेत्र अलग-अलग हैं। तीनों लेखक या तीनों चित्रकार या तीनों अभिनेता होते तो कब के आपस में लड़ मरे होते।

तब मुझे लगा कि मैं कोई कलाकार-वलाकार नहीं हूँ तो क्या हुआ, इंसान तो हूँ। घर में अपनी माँ, बीवी और बच्चों का पूरा ध्यान रखता हूँ। दफ्तर में अपना काम पूरी मेहनत और ईमानदारी से करता हूँ। घर से दफ्तर और दफ्तर से सीधा घर आता हूँ। बस, कभी-कभी इन तीनों दोस्तों के साथ रामजी के ढाबे पर बैठकर चाय पी लेता हूँ। मुझमें कोई ऐब नहीं। मैं किसी से काम, नाम या इनाम नहीं चाहता। अपनी मेहनत से जो मिल जाता है, उसी में खुश रहता हूँ। और जहाँ तक अपनी कहानी या निशानी छोड़ जाने की बात है, इस देश में करोड़ों लोग हैं, उनमें से कितने अपनी कहानी या निशानी छोड़ जाते हैं? वे दुनिया में दबे पाँव आते हैं और चले जाते हैं, जैसे एक दरवाजे से आए और दूसरे दरवाजे से निकल गए।

एक दिन चारों मित्र रामजी के ढाबे पर फुर्सत से चाय पीते हुए गपशप कर रहे थे। न जाने कैसे आत्महत्या पर बात चल पड़ी। सतिंदर ने कहा, "कितने सारे लोग आत्महत्या करने लगे हैं! अभी दक्षिण में कितने सारे किसानों ने आत्महत्याएँ कीं! और अब पंजाब के किसान भी करने लगे हैं! सोचो, पंजाब के किसान! जिन्होंने हरित क्रांति की थी! कहाँ क्रांति, कहाँ आत्महत्या!"

"तुम ठीक कहते हो, इधर आत्महत्याएँ बहुत बढ़ गई हैं।" जसपाल आत्महत्या करने वालों का मजाक-सा उड़ाता हुआ बोला, "परीक्षा में फेल हो गए, प्रेम में असफल हो गए, नौकरी नहीं मिली या छूट गई, मनचाही शादी नहीं हुई, घर या दफ्तर में तनाव बढ़ गया, पत्नी या बॉस को खुश नहीं रख सके, बेटियों के लिए दहेज नहीं जुटा पाए, लिया हुआ कर्ज नहीं चुका पाए, किसी असाध्य रोग के शिकार हो गए, या बुढ़ापे में अकेले और उपेक्षित हो गए, तो बस, कर ली आत्महत्या!"

"तुमने तो रमेश को कई कहानियों के प्लॉट बता दिए।" सुरेंद्र को कथाकार पर कटाक्ष करने का मौका मिल गया, "इसके तो मजे आ गए, मुसीबत हमारी है!"

कथाकार ने कहा, "कहानियाँ मैं लिखूँगा, तुम्हारी क्या मुसीबत है?"

"हमें पढ़नी पड़ेंगी!" सुरेंद्र ने कहा और ठहाका लगाया।

"मेरी कहानियाँ पढ़ना तुम्हारे लिए मुसीबत है, तो एक काम करो।" कहकर कथाकार रुका, ताकि सबका ध्यान अपनी तरफ खींच सके, और जब वह खिंच गया, तो उसने सुरेंद्र से कहा, "तुम आत्महत्या कर लो।"

इस पर सबने ठहाका लगाया। सबसे जोरदार स्वयं सुरेंद्र ने। ठहाके थमे तो उसने कहा, "मैं तो, कोई स्वर्ग देने का वादा करे, तो भी आत्महत्या न करूँ। वैसे मैं जानता हूँ कि आत्महत्या करने वाले नरक में ही जाते हैं।"

"कैसे मालूम?" जसपाल ने चुटकी ली।

सुरेंद्र ने उसे आँख मारी और कहा, "राज की बात है, पर तुम अपने ही आदमी हो, इसलिए बताए देता हूँ। मैं चार-पाँच बार आत्महत्या करके देख चुका हूँ। हर बार नरक में ही पहुँचा।"

"और वहाँ पहुँचते ही तुमने वापसी का टिकट कटा लिया, क्यों?" सतिंदर ने उसका मजाक उड़ाया।

"क्या करता? नरक भी कोई रहने लायक जगह है?"

कथाकार ने कहा, "यार सुरेंद्र, एक बार का अनुभव काफी नहीं था, जो चार-पाँच बार गए?"

"सोचा कि शायद इस बार स्वर्ग मिल जाए।"

"पर तुमने अपनी आत्महत्याओं के बारे में कभी बताया नहीं।"

"तुमने कभी पूछा ही नहीं।"

"चलो, अब पूछते हैं, बताओ।"

"मैं बताऊँगा और तुम कहानी लिख दोगे।" सुरेंद्र ने बड़े नाटकीय ढंग से कहा, "फोकट में साढ़े चार कहानियों के प्लॉट लेना चाहते हो?"

"साढ़े चार? अभी तो तुम पाँच कह रहे थे?"

"पाँच नहीं, चार-पाँच। पाँचवीं और आखिरी बार मैं आत्महत्या करते-करते रह गया।"

"क्यों?"

"रास्ता मेरा जाना-पहचाना हो गया था न! मैंने सोचा, यह तो नरक का ही रास्ता है, आगे क्या जाना!"

"अच्छा, अब ज्यादा बोर मत करो।" सतिंदर ने कहा, "जल्दी से अपने किस्से गढ़ो।"

जसपाल ने जोड़ा, "हाँ, रमेश के साथ रहते-रहते तुम भी आधे-चौथाई किस्सागढ़क तो हो ही गए हो।"

"तो ठीक है, शुरू करता हूँ।"

और उस शाम सुरेंद्र ने ये किस्से सुनाए :

किस्सा सुरेंद्र की पहली आत्महत्या का

तो दोस्तो, एक बार ऐसा हुआ कि मैं परीक्षा में फेल हो गया। क्लास टीचर ने मुझे भरी क्लास में फटकारा और रिजल्ट कार्ड थमाते हुए कहा, "कल इस पर अपने फादर के साइन कराके लाना।" मुझे पता था, वह यही कहेगी। लेकिन पापा से मैं बहुत डरता था। दस में से एक विषय में फेल होने पर भी वे मेरी धुनाई कर देते थे। सो मैंने टीचर से झूठ बोला, "मैम, पापा तो टूर पर बाहर गए हैं, माँ से साइन करा लाऊँ?" टीचर भी उस्ताद थी; बोली, "तुम्हारे पापा को मैं जानती हूँ, वे किसी टूर-वूर पर नहीं जाते हैं।

एंड मोर ओवर, मैंने अभी थोड़ी देर पहले टेलीफोन पर उनसे बात की है और तुम्हारा रिजल्ट उनको बता दिया है।"

"मारे गए!" मैंने मन ही मन कहा, "अब? अब तो माँ भी मुझे नहीं बचा पाएँगी। हालाँकि मैं इतना फेल नहीं हूँ कि अगली क्लास में प्रमोट न हो सकूँ, फिर भी पापा से यह नहीं कह सकता कि अगले साल खूब मेहनत करूँगा और फर्स्ट आकर दिखाऊँगा। माँ तो ऐसी बातें सुनकर खुश हो जाती हैं और माफ कर देती हैं। पर पापा तो कुछ कहने का मौका दिए बिना ही धुनाई शुरू कर देंगे। यह भी नहीं सोचेंगे कि मारने से बच्चे को चोट तो लगती ही है, उसका अपमान भी होता है। बच्चा चोट को भले ही भूल जाए, अपने अपमान को कभी नहीं भूलता।"

मुझे मालूम था कि फेल होने वाले कई लड़के आत्महत्या कर लेते हैं। स्कूल से घर लौटते समय स्कूल बस में बैठा-बैठा मैं यही सोचता रहा कि फेल होने का रिजल्ट कार्ड लेकर पापा का सामना करने के मुकाबले आत्महत्या कर लेना क्या ज्यादा ठीक नहीं होगा? आत्महत्या के कुछ तरीके मुझे मालूम थे - फिल्मों और टी.वी. में देखे थे - जैसे, रिवॉल्वर से खुद को गोली मार लेना, जहर खा लेना या पी लेना, कटार या तलवार अपने पेट में घुसेड़ लेना, ऊँचे पहाड़ पर चढ़कर नदी या घाटी में छलाँग लगा देना, रेलवे लाइन पर लेटकर ट्रेन से कट मरना। लेकिन मेरे घर में कोई रिवॉल्वर था न जहर, कोई कटार थी न तलवार। पहाड़, नदी और घाटी कहीं तो होंगे, पर कहाँ हैं, मुझे मालूम नहीं था। लेकिन रेलवे स्टेशन मेरे घर के पास ही था। सो घर के पास स्कूल बस से उतरकर मैं घर नहीं गया, स्टेशन की तरफ चल दिया। पीठ पर स्कूल बैग लादे मैं स्टेशन पहुँच गया। प्लेटफार्म पर जाने से मुझे किसी ने नहीं रोका। प्लेटफॉर्म पर खड़ी और पड़ी भीड़ से बचता हुआ मैं चलता चला गया और दूर वाले छोर पर जहाँ एकांत था, ट्रेन की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया। मुझे बड़ा डर लग रहा था। पर मैंने सोचा : मरना है तो डरना क्या?

थोड़ी ही देर में एक ट्रेन धड़धड़ाती हुई आ गई और मैं उसके सामने कूद पड़ा। कूद पड़ा और ट्रेन से कटकर मर गया। लेकिन मरते ही मानो मेरा पुनर्जन्म हो गया। मैंने पाया कि मैं एक ट्रेन में बैठा हूँ। साबुत और सही-सलामत। कंपार्टमेंट में कुछ सहयात्री भी थे। मेरे जैसे ही लड़के। मैंने उनसे पूछा कि मैं तो ट्रेन के नीचे कटकर मर गया था, यहाँ ट्रेन के अंदर कैसे आ गया?

"यह वो वाली ट्रेन नहीं है।" एक लड़के ने जवाब दिया।

"तो यह कौन-सी ट्रेन है और कहाँ जा रही है?" मैंने पूछा।

"स्वर्ग। ट्रेन से कटने वाले ट्रेन में बैठकर ही स्वर्ग को जाते हैं।"

मैंने स्वर्ग के बारे में जो कुछ पढ़ा-सुना था, उसे याद किया, तो मुझे बड़ा अच्छा लगा। वाह, आत्महत्या तो बड़ी अच्छी चीज है। लगे हाथ स्वर्ग भी देखने को मिल गया।

"लो, ट्रेन रुक गई। स्वर्ग आ गया। चलो, उतरो।"

"स्वर्ग? यह स्वर्ग है? इतना गंदा और गंधाता?" मैं ट्रेन से उतरकर इधर-उधर देखने लगा। वहाँ न तो कहीं नंदन कानन दिख रहा था, न कल्पवृक्ष, न कामधेनु, न इंद्र की सभा, न नाचती हुई अप्सराएँ। वहाँ तो जहरीली हवा और दमघोंटू धुआँ फैला हुआ था। वहाँ तरह-तरह के कारखाने शोर कर रहे थे, ईंटों के भट्ठे धुआँ उगल रहे थे और गंदे-संदे ढाबे तरह-तरह की बदबुएँ फैला रहे थे। और उन सब जगहों पर मेरी उम्र के लड़के काम कर रहे थे। मैंने एक लड़के से पूछा, "क्या तुम नहाते नहीं? तुमने इतने गंदे और फटे हुए कपड़े क्यों पहन रखे हैं? तुम स्कूल नहीं जाते?"

"इस नरक में इस्कूल-विस्कूल कहाँ!" लड़के ने उत्तर दिया।

"नरक?"

"और क्या! यह नरक ही तो है।"

मैंने सुना तो भागा वहाँ से। यह कहता हुआ कि इससे तो पापा की मार ही भली, टीचर की फटकार ही भली। और ताज्जुब की बात, मैं अपने घर पहुँचा, तो पापा ने मुझे मारा नहीं। प्यार से गोद में उठा लिया और कहा, "कहाँ चले गए थे? देखो, तुम्हारी माँ का क्या हाल है!"

मैंने देखा, माँ रो रही थीं, पर अब हँस रही थीं। उन्होंने मुझे पापा की गोद से अपनी गोद में ले लिया और कई बार मेरा मुँह-माथा चूमा। और मुझे लगा, स्वर्ग कहीं है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।

किस्सा सुरेंद्र की दूसरी आत्महत्या का

दोस्तो, दूसरी बार मैंने आत्महत्या तब की, जब मैं बी.ए. में पढ़ता था। हुआ यह कि अपने साथ पढ़ने वाली एक लड़की से मुझे प्रेम हो गया। हाँ, हाँ, वही रीना वाला किस्सा। अब चूँकि तुम लोग उस किस्से को जानते हो, इसलिए दोहराऊँगा नहीं। बस, उस दिन की बात बताऊँगा, जिस दिन उसके चक्कर में मैंने आत्महत्या की।

वह उतरती सर्दियों का एक शानदार चमकीला दिन था। न गर्मी न सर्दी। परीक्षाएँ अभी शुरू नहीं हुई थीं, लेकिन परीक्षा की तैयारी के लिए मिलने वाली छुट्टियाँ हो चुकी थीं। उन छुट्टियों में कॉलेज कौन जाता है? सो रोजाना मिलने के लिए हमने 'कंबाइंड स्टडी' का तरीका निकाला था। मेरे माता-पिता तो इतने उदार नहीं थे कि रीना को मेरे कमरे में बैठकर पढ़ने देते, इसलिए मैं रीना के घर जाया करता था। वहाँ हमें कोई 'डिस्टर्ब' नहीं करता था। नौकर चाय देने आता, तो वह भी दरवाजे पर पड़े परदे को हटाने से पहले इजाजत लेता। सो हम निश्चिंत होकर प्रेम और पढ़ाई करते।

उस दिन क्या हुआ कि मैंने बातों ही बातों में रीना से पूछ लिया कि हम शादी कब और कैसे करेंगे। रीना ने कुछ अजीब हास्य-व्यंग्य के साथ कहा, "शादी? तुम अभी सिर्फ बी.ए. में पढ़ते हो और शादी के बारे में सोचते हो?"

"क्यों? हम प्रेम नहीं करते?" मैंने प्रेम और विवाह संबंधी अपनी उस समय की धारणा के अनुसार कहा, "प्रेम शादी के लिए नहीं, तो और किसलिए किया जाता है?"

"तुम बौड़म हो!" रीना ने हँसते हुए कहा, "हम दोस्त हैं, प्रेमी-प्रेमिका नहीं। और शादी तो हमारी हो ही नहीं सकती। हम ब्राह्मण हैं और तुम..."

रीना ने मुझे मेरी जाति बतायी, तो मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा, "अगर तुम्हें अपने ब्राह्मण होने का इतना घमंड है, तो मुझे अपने घर क्यों बुलाती हो? पढ़ाई के बहाने एकांत कमरे में बैठकर मेरे साथ प्रेम की बातें और चूमा-चाटी क्यों करती हो?"

यह सुनकर रीना को भी गुस्सा आ गया। फिर हम दोनों में खूब लड़ाई हुई, जिसके अंत में उसने मुझे अपने घर से निकल जाने के लिए कहा और मैंने कहा कि "मैं तुम पर और तुम्हारे घर पर थूकता हूँ।"

मैं उसके घर से निकल तो आया, पर मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था कि मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ। मेरी आँखों में धुंध भरी हुई थी और पैर लड़खड़ा रहे थे। मेरा मन पछतावे से भरा हुआ था - मैं रीना से क्यों लड़ा? मैंने उसकी दोस्ती को प्रेम समझने की बेवकूफी क्यों की? प्रेम तक भी गनीमत थी, शादी की बात क्यों सोची? कहाँ वह, कहाँ मैं! कोई मेल है? यह तो रीना की उदारता थी कि उसने मुझसे दोस्ती की। वह खुद कहाँ मानती है जात-पाँत? अपनी जूठी चाय मुझे पिलाती थी, मेरी जूठी चाय खुद पीती थी। उसने ठीक ही तो कहा कि बी.ए. में पढ़ने वाले लड़के को शादी के बारे में नहीं सोचना चाहिए।

पहले अपना कैरियर बनाना चाहिए, अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए, तब शादी के बारे में सोचना चाहिए। रीना सही है। समझदार है। मैं ही बेवकूफ हूँ। गधा।

मैं चलता रहा और अनजाने में ही झील पर पहुँच गया। मौसम अच्छा था। सैलानी झील के किनारे घूम रहे थे और बहुत-से लोग खुशी से चीखते-चिल्लाते झील में बोटिंग कर रहे थे। लेकिन मैं बहुत दुखी था। मैं एक निर्जन-सी जगह जाकर बैठ गया और खूब रोया। रो लेने के बाद मुझे एक चिंता सताने लगी। रीना ने मेरा अपमान किया था, मेरी जाति बताकर एक तरह से मुझे नीच कहा था, लेकिन मैं किसी से इस बात की शिकायत भी नहीं कर सकता था। कॉलेज में सबको मालूम है कि मैं रीना से प्रेम करता हूँ। अब जब वे देखेंगे कि हम दोनों में बोलचाल तक नहीं है, तो कारण पूछेंगे। मैं क्या बताऊँगा? जबकि रीना हँस-हँसकर मेरी बेवकूफी का किस्सा सबको सुनाएगी। तब मुझे कितनी शर्म आएगी! चुल्लू भर पानी में डूब मरने वाली बात होगी।

"चुल्लू भर पानी में क्यों, झील भर पानी में क्यों नहीं?" मैंने अपने-आपसे कहा और उसी क्षण आत्महत्या करने का निर्णय कर लिया।

मैं जैसे था - कपड़े-जूते पहने - वैसे ही झील में कूद पड़ा। हालाँकि मुझे तैरना आता था, फिर भी मैंने खुद को डूबने दिया। जब मैं डूबकर मर गया, तो मैंने पाया कि मैं एक पनडुब्बी में हूँ और दो यमदूत मेरे अगल-बगल बैठे हुए हैं। मैंने उनसे पूछा, "आप लोग मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?"

"पाताल में।" उनमें से एक ने कहा।

"पाताल में क्यों? मरने के बाद तो आदमी स्वर्ग या नरक में जाता है।"

"पाताल में भी स्वर्ग-नरक हैं।" उनमें से दूसरे ने कहा।

मैंने पनडुब्बी के अंदर होने पर चकित होकर पूछा, "मृत्यु का वाहन तो काला भैंसा माना जाता है न? फिर यह पनडुब्बी? लगता है, यमलोक ने भी टेक्नोलॉजी में काफी तरक्की कर ली है।"

"जो लोग पानी में डूबकर आत्महत्या करते हैं, उनको हम पनडुब्बी में ही पाताल ले जाते हैं। और हमारी टेक्नोलॉजी तो सदा से ही बड़ी उन्नत है।"

"लेकिन पाताल तो नीचे होता है और स्वर्ग ऊपर। इसीलिए एक शायर ने उसे जमीन पर उतार लाने की बात कही है। पाताल में स्वर्ग कैसे हो सकता है?"

"स्वर्ग पाताल में भी होता है, बल्कि आजकल तो पाताल ही स्वर्ग है।"

"मैं समझा नहीं।"

"बी.ए. में पढ़ते हो और इतना भी नहीं समझते? तुम भारत में रहते हो न? अगर तुम जमीन को खोदते हुए सीधे नीचे उतरते जाओ, उतरते ही चले जाओ, तो कहाँ पहुँचोगे?"

"अमेरिका।"

"तो अमेरिका ही स्वर्ग है।" एक यमदूत ने कहा और दूसरा यमदूत उसी समय बोल उठा, "लो, स्वर्ग आ गया।"

पनडुब्बी से बाहर निकलते ही मैंने अपने-आपको न्यू यॉर्क की एक सड़क पर पाया। और तभी मैंने देखा कि सड़क पर कई गोरे मिलकर एक काले को मार रहे हैं - बूटों की ठोकरों से, बंदूकों के कुंदों से - और वह काला आदमी जमीन पर पड़ा बिलबिला रहा है, मदद के लिए चिल्ला रहा है। मगर अजीब बात, गोरे स्त्री-पुरुष, जिनमें बूढ़े-बच्चे-जवान सभी हैं, आँखों के सामने होते उस अत्याचार को देखते हुए भी अनदेखा करते चले जा रहे हैं। दूसरी तरफ गेहुँए रंग वाले भारतीय, पाकिस्तानी, बंगलादेशी वगैरह डरकर भाग रहे हैं। मुझे यह दृश्य बड़ा बीभत्स लगा और मैंने घृणा के साथ थूकते हुए कहा, "यह स्वर्ग है? यह तो नरक है नरक! मुझे यहाँ से वापस ले चलो।"

वे दोनों यमदूत मुझे फिर पनडुब्बी में ले गए और वापस लाकर झील के किनारे छोड़ गए।

"झील भर पानी में डूब मरने से चुल्लू भर पानी में डूब मरना भला।" मैंने अपने-आपसे कहा और अपने घर की तरफ चल दिया। लेकिन घर पहुँचकर क्या देखता हूँ कि रीना वहाँ पहले से आई बैठी है और मेरे माता-पिता से हँस-हँसकर बातें कर रही है। मुझे देखते ही उसने हँसकर कहा, "परीक्षा की तैयारी के दिनों में भी तुम कहाँ घूमते रहते हो? मैं कबसे तुम्हारा इंतजार कर रही हूँ। देखो, चाय भी पी चुकी। तुम्हें भी पीनी है, तो पी लो और मुझे ईको के कुछ सवाल समझा दो, मेरी समझ में नहीं आ रहे हैं।"

मेरी माँ ने कहा, "बेचारी बड़ी देर से आई बैठी है। जा, इसे अपने कमरे में ले जा। मैं तेरे लिए चाय बनाकर वहीं ले आऊँगी।"

मैंने महसूस किया कि मेरा घर पाताल के स्वर्ग से बहुत अच्छा है।

किस्सा सुरेंद्र की तीसरी आत्महत्या का

दोस्तो, तीसरा किस्सा तब का है, जब पापा की मृत्यु हो चुकी थी, हमारे घर की हालत खस्ता थी, और मैं एम.ए. करके बेरोजगार भटक रहा था। मुझे नौकरी नहीं मिल रही थी, क्योंकि मैं आरक्षण के आधार पर नहीं, योग्यता के आधार पर नौकरी पाना चाहता था, और नौकरी देने वाले योग्यता नहीं, घूस की रकम देखते थे। मुझे जिस तरह की नौकरी की तलाश थी - कि काम कम करना पड़े, वेतन ज्यादा मिले, और लगे हाथ समाज में कुछ रोब-रुतबा भी हो - उस तरह की नौकरी का रेट उस समय डेढ़-दो लाख रुपए चल रहा था। इतनी रकम तभी जुट सकती थी, जब मकान बेच दिया जाए। वह मकान, जो पापा के खून-पसीने की कमाई से बना था और जिसे बनवाने के लिए माँ ने अपनी जवानी के बीस बरस अपना पेट काटकर बिताए थे। उसे बनवाकर माँ के जीवन की सबसे बड़ी साध और साधना पूरी हुई थी। फिर, उससे पिताजी की यादें जुड़ी थीं और माँ के सपने भी - कि इसी मकान में बहू आएगी, बच्चे खेलेंगे और नाती-पोतों वाली होकर माँ जब मरेंगी, तो उनकी अर्थी इसी मकान से उठेगी।

ऐसे मकान को मैं अपनी नौकरी की खातिर बेच दूँ, यह मुझे मंजूर नहीं था। लेकिन डेढ़-दो लाख रुपए कहाँ से लाऊँ, मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था। उधर मेरे साथ के लड़के - जिनमें से एक यह सतिंदर तो यहीं बैठा है - अच्छी-अच्छी नौकरियों पर लगते जा रहे थे। इससे मुझे बड़ी हीनता महसूस होती थी। जिंदगी जी का जंजाल मालूम होने लगी थी। सो मैंने सोचा कि आत्महत्या ही कर लूँ। लेकिन तरीका? इस बार मैं कैसे मरूँगा? ट्रेन से कटकर देख लिया और झील में डूबकर भी देख लिया। इस बार जहर या नींद की गोलियाँ खा लूँ? या छत के पंखे से लटक मरूँ? या कलाइयों की नसें काटकर मर जाऊँ? कई विकल्प थे, पर मुझे एक भी पसंद नहीं आया। इस तरह मरना भी कोई मरना हुआ? जीना न सही, मरना तो ऐसा होना चाहिए कि लोग देखें। उसकी खबर बने। लोग चौंकें। मरने का कारण जानने के लिए उत्सुक हों। तब तो मरना सार्थक है, वरना क्या?

फिर, मैं बेरोजगारी के कारण मर रहा था, जो मेरी कोई निजी समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक समस्या थी। उसे समाज ही हल कर सकता था। लेकिन निजी तौर पर मैं उसकी तरफ समाज का ध्यान तो आकृष्ट कर ही सकता था। इसलिए मैंने निश्चय

किया कि मैं बड़े बाजार वाली सबसे ऊँची इमारत पर चढ़ूँगा और नीचे कूद पड़ूँगा। उस इमारत पर से कूदकर कई लोग जान दे चुके थे और उनके समाचार अखबारों में छप चुके थे। मेरा समाचार भी छपेगा, यह सोचकर मैंने 'शिक्षित बेरोजगार युवक आत्महत्या न करें तो क्या करें?' शीर्षक से एक लेखनुमा 'स्यूइसाइड नोट' लिखा और जेब में रख लिया। प्रेस और मीडिया की सुविधा के लिए अपना एक अच्छा-सा फोटो भी साथ रख लिया। क्या पता, ऊपर से कूदकर मरने में मेरा चेहरा इतना विकृत हो जाए कि पहचान में ही न आए!

इस तरह पूरी तैयारी के साथ मैं उस ऊँची इमारत में घुस गया। उसमें घुसने पर कोई रोक-टोक नहीं थी, क्योंकि उसमें हर मंजिल पर अखबारों, संवाद-समितियों, टेलीविजन और इंटरनेट कंपनियों के अलावा राजनीतिक पार्टियों के भी दफ्तर थे, जिनमें हर समय लोग आते-जाते रहते थे। मैं लिफ्ट से सबसे ऊपर की मंजिल पर गया और वहाँ से नीचे कूद पड़ा। मगर मैं नीचे जाकर गिरने से पहले ही हैदके से मर गया और मरने के बाद मैंने पाया कि हवा मुझे उड़ाए लिए जा रही है। एक क्षण को मुझे लगा कि मैं विमान में हूँ, पर गौर किया तो पाया कि खाली हवा में उड़ रहा हूँ। मुझे कुछ पता नहीं था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।

हवा ने मुझे बताया कि मेरी जेब में रखा मेरा फोटो और 'स्यूसाइड नोट' उसने उड़ाकर प्रेस और मीडिया तक पहुँचा दिया है और वह सारी दुनिया में प्रकाशित-प्रसारित-प्रचारित हो गया है और मैं एक क्रांतिकारी नवयुवक के रूप में प्रसिद्ध हो गया हूँ। लेकिन मुझे यह सुनकर कोई खुशी नहीं हुई, क्योंकि मैं तो मर चुका था। अब मेरा कुछ भी होता रहे, मुझे क्या?

हवा ने मुझे एक गाँव में ले जाकर उतारा। मैंने इससे पहले कोई गाँव नहीं देखा था, लेकिन गाँव के बारे में जो कुछ सुना-पढ़ा था, उससे मेरी यह धारणा बनी हुई थी कि गाँव बहुत अच्छा होता है, गाँव के लोग बड़े भोले और सीधे-सादे इंसान होते हैं, वे शहरों के-से कंकरीट के जंगल में नहीं रहते, बल्कि मनोरम प्रकृति के बीच जीते हैं और हवा से लेकर दूध तक हर चीज मिलावट से रहित शुद्ध खाते-पीते हैं। वहाँ लोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य और लोकसंस्कृति जैसी चीजें होती हैं, जो गाँव को स्वर्ग बनाती हैं। सो मैंने समझा कि इस बार तो आत्महत्या करके मैं स्वर्ग में आ गया। लेकिन आँख खोलकर देखा तो मेरी धारणा वाला गाँव वहाँ कहीं नहीं था। दोस्तो, गाँव का वर्णन करके मैं तुम लोगों को बोर नहीं करूँगा। अपने अनुभव के आधार पर केवल इतना कहूँगा कि मैं इस बार भी नरक में जा पड़ा था।

मैंने कई कहानियाँ पढ़ी थीं, जिनमें बताया जाता था कि गाँवों के युवक संगठित होकर क्रांति कर रहे हैं। मगर मैंने देखा कि वहाँ के बहुत-से नौजवान अपना घर-परिवार छोड़कर काम की तलाश में शहर जा रहे हैं। मैं उनके साथ हो लिया। मगर अजीब बात, उन्होंने मुझे अपने नेता की तरह आगे किया और मेरे पीछे चलने लगे। खैर, मैं उनके साथ अपने शहर आ गया और उनके साथ रोजगार की तलाश करने लगा। कोई मुझे कम अच्छी नौकरी देने की पेशकश करता, तो मैं उस नौकरी पर गाँव से साथ आए युवकों में से किसी को लगवा देता। थोड़े दिन बाद मैंने पाया कि मैं बेरोजगार नहीं हूँ, बल्कि दूसरों को रोजगार दिलाने वाला बन गया हूँ। इसके बदले में मुझे रोजगार देने वाले से भी कमीशन मिलता है और रोजगार पाने वाले से भी।

लेकिन कुछ दिन बाद ही मैंने पाया कि मुझ पर हमले होने लगे हैं और मेरी जान को खतरा है। बेरोजगारों को रोजगार दिलाने वाले और भी कई लोग सक्रिय थे, जो मुझे अपना प्रतिद्वंद्वी मान रहे थे और मुझे अपने रास्ते से हटा देना चाहते थे। कुछ दिन तक तो मैं यह सोचकर डटा रहा कि मैं तो मर चुका हूँ, मरे हुए को ये क्या मारेंगे, लेकिन जल्दी ही मेरी समझ में आ गया कि यह तो नरक है, जहाँ मरे हुओं को भी मारा जाता है। यह समझते ही मैं वहाँ से भागा, पर भागते-भागते मैंने अपने लिए एक अच्छी-सी नौकरी का जुगाड़ कर लिया। रोजगार देने वालों ने ही नहीं, रोजगार दिलाने वाले मेरे प्रतिद्वंद्वियों ने भी इसमें मेरी मदद की। सो दोस्तो, यह नौकरी जो मैं कर रहा हूँ, मैंने घूस-वूस दिए बिना अपनी योग्यता से पाई है।

किस्सा सुरेंद्र की चौथी आत्महत्या का

दोस्तो, तुम लोगों को मालूम है कि मेरी शादी रीना से नहीं हुई। जिससे हुई, उसे तुम जानते ही हो। उसे तुमने सर्वश्रेष्ठ सद्गृहिणी का खिताब दे रखा है, इसलिए उसकी शान में कोई गुस्ताखी नहीं करूँगा। लेकिन झगड़े तो अच्छे से अच्छे दंपतियों में भी होते हैं। सो एक दिन क्या हुआ कि कोमल से मेरा झगड़ा हो गया। कारण कोई खास नहीं था। मैं हँसी-मजाक के मूड में था और कोमल की धार्मिक भावनाओं से छेड़छाड़ कर रहा था।

मैंने कहा, "अच्छा, यह बताओ कि गणेश शिव के पुत्र थे?"

"नहीं थे क्या?" कोमल ने खीझ भरे स्वर में कहा।

"पार्वती से उत्पन्न सगे पुत्र थे?"

"हाँ, थे! तो?"

"तो यह बताओ कि सगा बेटा अपने माता-पिता के विवाह में कहाँ से आ गया? शिव-पार्वती के विवाह में गणेश-पूजन क्यों और कैसे हुआ?"

"तुलसीदास इसका जवाब दे चुके हैं। उन्होंने कहा है - सुर जिय जानि अनादि। देवता तो अनादि और अनंत हैं।"

"बात कुछ जँचती नहीं। मुझे लगता है कि गणेश पार्वती के पुत्र तो थे, पर शिव से विवाह होने से पहले के। पार्वती गणेश को अपने साथ लेकर आई होंगी और उस समय ऐसी प्रथा रही होगी कि माँ के विवाह में विवाह से पहले हुई उसकी संतान की पूजा की जाए।"

"तुम हमारे देवी-देवताओं के बारे में ऐसी बातें मत किया करो।" कोमल को गुस्सा आ गया, "इस तरह की बातें सुनना भी पाप है।"

मुझे भी तैश आ गया, "तुम तर्क, बुद्धि और विवेक से काम लेना कब शुरू करोगी?"

"मैं तर्क नहीं कर सकती? मैं बुद्धिहीन हूँ? मैं विवेकहीन हूँ?"

"मैंने यह नहीं कहा।"

"कहा है।"

"मैंने यह नहीं कहा, मैं तो..."

"कहा है। कहा है। कहा है। मैं सब जानती हूँ। तर्क-बुद्धि-विवेक वाली तो वह ब्राह्मण की बेटी थी न, जिसके साथ तुम कंबाइंड स्टडी के नाम पर गुलछर्रे उड़ाया करते थे!"

"उसे बीच में मत लाओ।"

"लाऊँगी। और क्यों न लाऊँ? तुमको उसने छोटी जाति का बताकर ठेंगा दिखा दिया, पर तुम्हारे मन में वह अब भी मेरी सौत बनकर बैठी हुई है। तुम हर बात में मेरी तुलना उससे करके मुझे नीचा दिखाते रहते हो।"

"तुमसे तो बात करना मुश्किल है।"

"तो छोड़ दो मुझे। तलाक दे दो। तुम्हारी वह तो किसी और की ब्याहता हो गई, तुम उस जैसी किसी और से शादी कर लो।"

"बकवास मत करो।" मैंने कहा और झगड़ा न बढ़ाने के विचार से उठकर बाहर घूमने चल दिया।

पीछे से कोमल की बकझक सुनाई देती रही।

बाहर निकलते ही मेरा मन हुआ कि रीना से मिलना चहिए। हालाँकि शादी के बाद उससे मेरा मिलना एक-दो बार, अचानक और राह चलते ही हुआ था, फोन भी हम एक-दूसरे को कभी नहीं करते थे, फिर भी मेरे मन में एक विश्वास-सा जमा हुआ था कि रीना मेरी मित्र है और जरूरत पड़ने पर मैं उसके पास जाकर अपने सुख-दुख की बातें कर सकता हूँ। मैं उसके पति अमरनाथ शर्मा को जानता था। वह थोड़ा घमंडी और अपनी शान-शौकत का दिखावा करने वाला जरूर था, पर मुझे संकीर्ण विचारों का ओछा आदमी नहीं लगता था। जब भी मिलता, अपने घर आने की दावत देता - कभी आइए न, रीना आपके बारे में अक्सर बात करती है।

यही सब सोचता हुआ मैं रीना के घर जा पहुँचा। यानी उसके पति के घर। पर वहाँ तो मातम छाया हुआ था। पता चला कि रीना अपनी एक साल की बच्ची के लिए दूध गरम कर रही थी कि न जाने कैसे उसके कपड़ों में आग लग गई और...

उसके पति ने रसोई की आग से लेकर चिता की आग तक का वर्णन किया। वह काफी दुखी दिखने का प्रयास कर रहा था, बीच-बीच में सूखी आँखें भी पोंछता जाता, पर मुझे लगा कि वह मुझे गौर से देखकर कुछ ताड़ने की कोशिश कर रहा है। मुझे उससे घृणा होने लगी। और उस समय तो मैं एकदम फट पड़ने को हो गया, जब उसने मुझे संदेहपूर्वक देखते हुए कहा, "पर आपको कैसे पता चला?" अगर मैं कहता कि मुझे कुछ भी मालूम नहीं था, मैं तो यों ही रीना से सुख-दुख की बातें करने चला आया था, तो वह शायद कुरेद-कुरेदकर पूछने की कोशिश करता। मैंने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और वहाँ से चला आया।

लौटते समय मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे और मैं किसी से मिलकर अपना दुख बाँटना चाहता था। मगर मुझे दुनिया में एक भी व्यक्ति ऐसा नजर नहीं आया। मैंने तुम तीनों को भी याद किया, लेकिन लगा कि तुम भी मुझे गलत समझोगे। तुम भी संदेहपूर्वक वही सवाल करोगे - "पर तुमको कैसे पता चला?" मैं तुमको क्या जवाब दूँगा? टेलीपैथी? अंतःप्रेरणा? सच्ची मुहब्बत? मैं जो भी जवाब दूँ, वह खुद मुझे रीना

के प्रति अपने प्रेम का विज्ञापन लगेगा। और यह कितनी घटिया बात होगी! खास तौर से अब, जबकि रीना इस दुनिया में नहीं है।

फिर, जब कोमल को पता चलेगा, तब? वह तो मेरा जीना ही दूभर कर देगी। सोचेगी - शादी के बाद भी रीना से मेरा कुछ संबंध अवश्य रहा होगा।

मुझे लगा कि पूरी दुनिया में मुझे समझने वाला, मेरे दुख को समझ सकने वाला कोई नहीं है। और मैंने सोचा - ऐसी दुनिया में जीने से क्या फायदा?

तभी मैंने पाया कि मैं बाजार में हूँ और मिट्टी के तेल की दुकान के सामने से गुजर रहा हूँ। उस दुकान पर तेल के साथ-साथ तेल भरने के लिए प्लास्टिक के कंटेनर भी बिक रहे थे। मैंने एक कंटेनर खरीदा, उसमें दो लीटर तेल भरवाया और आगे जाकर एक पनवाड़ी से माचिस भी खरीद ली।

चलते-चलते मैंने अपने-आपको रिज पर पाया, जहाँ कीकरों का जंगल था। मैं उस जंगल में घुस गया। एक बिलकुल एकांत जगह में रुककर मैंने मिट्टी का तेल अपने ऊपर उँड़ेला और माचिस जलाकर खुद को आग लगा ली।

मैं धुआँ बनकर उड़ा और इस बार सच्ची-मुच्ची के नरक में पहुँच गया। यानी उस नरक में, जो मैंने किताबों में पढ़ा और तस्वीरों में देखा था। वहाँ अलग-अलग तरह के पापियों को अलग-अलग तरह की सजाएँ दी जा रही थीं। किसी को कुल्हाड़ी से काटा जा रहा था, किसी को आरे से चीरा जा रहा था। किसी को कोल्हू में पेरा जा रहा था, किसी को आग में जलाया जा रहा था...

जो लोग यातनाएँ देने का यह काम कर रहे थे, मुझे देखते ही बोले, "आ गया अपने प्रेम का ढिंढोरा पीटने वाला पापी। खुद मरकर मरी हुई को बदनाम करने वाला। उधर वह जलकर मरी, इधर यह खुद को आग लगाकर मरा। दुनिया वाले क्या मूर्ख हैं, जो इसका मतलब नहीं समझेंगे? अपने प्रेम का कैसा घटिया विज्ञापन किया है इस पापी ने! लाओ, इसे यहाँ लाओ, इसे अनंत काल तक आग में जलाओ..."

यह सुनते ही मैं वहाँ से भागा और अपने घर आकर ही रुका।

घर में सन्नाटा छाया हुआ था। कोमल ने चुपचाप उठकर मेरे लिए पानी ला दिया और पास ही चुपचाप बैठी हुई माँ की तरफ देखा। माँ ने हिम्मत-सी बटोरते हुए कहा, "सुरू, बेटा, रीना की माँ का फोन आया था। रीना को उसकी ससुराल वालों ने जलाकर मार डाला है।"

माँ उन लोगों को गालियाँ दे-देकर कोसने लगीं। कोसते-कोसते रोने लगीं। रोते-रोते कहने लगीं, "दुनिया में यह जात-पाँत न होती, तो आज वह मेरी बहू होती। मैं उसे अपनी पलकों की छाँव में रखती..."

आश्चर्य, रीना की बात हो रही थी और कोमल चुप थी। थोड़ी देर बाद उसने जैसे अपने-आपसे कहा, "मैंने उसे कभी देखा नहीं था, पर ऐसा लगता था, जैसे मैं उसे खूब जानती हूँ। मैं उसका नाम लेकर तुमसे लड़ती थी। आज भी लड़ी थी। पर मैं क्या जानती थी कि उस वक्त वह दुनिया में नहीं है। ...बेचारी अपनी जिंदगी जीती थी, मेरा क्या लेती थी?"

और मैं खामोश बैठा सोच रहा था - कौन कहता है कि मुझे समझ सकने वाला कोई नहीं**?**

किस्सा सुरेंद्र की अधूरी आत्महत्या का

दोस्तो, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, पाँचवीं और आखिरी बार मैं आत्महत्या करते-करते रह गया। हुआ यह कि नौकरी में आरक्षण के आधार पर मेरी पदोन्नति हुई और मैं अपने विभाग का निदेशक बन गया। लेकिन पता नहीं कहाँ से निदेशक पद का एक ब्राह्मण दावेदार निकल आया। और वह दावेदार कौन था? वही अमरनाथ शर्मा, जिसने रीना को जलाकर मार डाला था। वह पहले से ही पदोन्नति के साथ अपना तबादला कराकर मेरे विभाग में निदेशक बनकर आने के लिए जोड़-तोड़ कर रहा था। निदेशक मैं बन गया, तो उसने मुझे तरह-तरह से परेशान करना शुरू कर दिया। वह मुझे जान से मरवा देने की धमकियाँ देने लगा। एक बार तो उसने मुझे गुंडों से पिटवा भी दिया। तंग आकर मैं सोचने लगा कि निदेशक पद से हट जाऊँ या आत्महत्या कर लूँ। लेकिन मैं डटा रहा। तब उसने पैंतरा बदला और एक दिन वह रीना का वास्ता देता हुआ मेरे पास आया। कहने लगा, "मेरा तबादला आपके विभाग में हो गया है। मैं यहाँ डायरेक्टर होकर आने वाला था। पर आपके कारण मुझे डिप्टी डायरेक्टर होकर आना पड़ा है। यानी मुझे आपके नीचे काम करना पड़ेगा। मेरी आत्मा को यह स्वीकार नहीं कि मैं बाह्मण होकर आपके नीचे काम करूँ। आप तो डायरेक्टर बन ही गए हैं, आप अपना तबादला कहीं और करा लीजिए। इंसानियत के नाते..."

मैंने कहा, "शर्माजी, मेरी पदोन्नति नियमानुसार हुई है। यह तो सरकारी विधि-विधान है। इसमें इंसानियत का सवाल कहाँ से आ गया? आप खुद ही सोचिए, आपके पास अठारह कमरों वाली एक शानदार कोठी है। अगर कोई आपसे आकर कहे

कि उसका परिवार आपके परिवार से ज्यादा बड़ा और ज्यादा जरूरतमंद है, तो क्या आप अपनी कोठी उसे दे देंगे?"

मैंने तो यह बात यों ही, मिसाल के तौर पर कही थी। मुझे क्या मालूम था कि वह सरकारी अफसर होने के साथ-साथ प्रॉपर्टी डीलर भी है और शहर के एक बड़े माफिया गिरोह से संबंधित है, जिसका काम दूसरों की जायदाद को जबर्दस्ती हथियाना है। वह जिसे अपनी मेहनत की गाढ़ी कमाई से एक-एक पाई जोड़कर बनाई गई कोठी कहता था, वास्तव में किसी और की थी, जो उसने जबर्दस्ती हथिया ली थी। मेरी बात सुनकर वह सकते में आ गया। उसे लगा कि शायद मैंने जासूस वगैरह लगाकर उसके बारे में सब कुछ मालूम कर लिया है और कोठी वाली बात उसे धमकाने के लिए कही है। वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा और बोला, "सुरिंदरजी, मैं समझ गया। आप अपनी जगह जमे रहो, मैं ही अपना तबादला कहीं और करा लूँगा। मैं भूल गया था कि आप बेरोजगारों के नेता रह चुके हो। नेता तो नेता ही होता है, चाहे भूतपूर्व ही क्यों न हो! मेरे लायक कोई सेवा हो तो बताओ। आपके लिए भी कोई कोठी देखूँ?"

मुझे उस गिरगिट पर इतना गुस्सा आया कि मैंने सोचा, इसी वक्त इसे मार डालूँ और खुद भी मर जाऊँ। लेकिन मैंने सोचा, यह तो नरक में जाएगा ही, मैं इसके साथ वहाँ क्यों जाऊँ?

आज सुरेंद्र इस दुनिया में नहीं है। उसके दोस्तों के पास उसके ये किस्से ही रह गए हैं। इनके अलावा वह अपनी कोई कहानी नहीं छोड़ गया है।

वह अपनी जिंदगी को आत्महत्याओं का एक सिलसिला मानता था और अपनी मृत्यु की कल्पना बड़े प्रचंड रूपों में किया करता था। लेकिन उसकी मृत्यु कैसे हुई? एक रात सोते-सोते हृदयगति रुक जाने से। इतने चुपचाप कि घर में माँ, कोमल या बच्चों में से किसी को पता नहीं चला। वह ऐसे चला गया, जैसे दबे पाँव दूसरे दरवाजे से निकल गया हो।

X

https://www.hindiadda.com/dusara-daravaja/